International Journal of Applied Research 2016; 2(2): 653-656

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(2): 653-656
www.allresearchjournal.com
Received: 26-12-2015
Accepted: 29-01-2016

डा0 निधि शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

Correspondence
डा0 निधि शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में युगीन समस्याएँ एवं युग चेतना

डा0 निधि शर्मा

प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद हिन्दी नाट्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में प्रसाद एक ओर भारतेन्दु की नाट्यपरम्परा को विकास और गति देते हैं तो दूसरी ओर तत्युगीन समस्याओं को भी अपने नाटकों द्वारा उकेरते हैं। भारतेन्दु के अवसान के पश्चात और प्रसाद के आगमन के पूर्व हिन्दी–नाट्य–जगत् उपेक्षित सा रहा। इस कालावधि में मौलिक कही जाने वाली नाट्य–रचनाओं का कितना आभाव है, इसका परिचय किशोरीलाल गोस्वामी के 'चौपट चपेट' में व्यक्त विचार से मिल जाता हैः– "हिन्दी के अभाग्यवश जब से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी परलोक सिधारे, तबसे साहित्य की बड़ी दुर्दशा हो रही है। गद्य तो जो है सो है ही..... नाटक–विद्या को तो कदाचित् बाबू साहिब अपने संग ले गये हैं। उनके पीछे दो–एक रुपक कि जिनसे घण्टा भर जी लगे, छोड़ के और आज तक कोई नाटक नहीं बने।"

इस अभाव को दूर कर हिन्दी नाट्य–कला को एक प्रशस्ति पथ और गौरवपूर्ण स्थान दिलाने के श्रेय विशेषतः प्रसाद जी को है। "उन्होंने नाट्य क्षेत्र में प्रवेश कर नाटक को नये चरित्र, नयी घटनायें, नया ऐतिहासिक देश–काल, नया आलाप–संलाप, संक्षेप में नया सभारम्भ दिया।" डा0 बच्चनसिहं के अनुसार भी "प्रसाद का आविर्भाव हिन्दी नाट्य साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ता है। उनके पहले के नाटककारों ने वर्ण्य–वस्तु को भी न तो श्रम–पूर्वक उपलब्ध किया और न उनकी पुर्नरचना की।.... अपने रोमाण्टिक दृष्टिकोण के कारण प्रसाद ने हिन्दी नाटकों का नया विन्यास किया।"

हिन्दी नाटक–साहित्य के इतिहास में प्रसाद जी का आविर्भाव एक महत्त्वपूर्ण घटना है। प्रसाद का सांस्कृतिक एवं रामांटिक दृष्टिकोण हिन्दी–नाटक की विशिष्ट उपलब्धि है। "प्रसाद के सभी नाटकों का आधार सांस्कृतिक है। आर्य संस्कृति में उन्हे गहन आस्था थी, इसलिये उनके नाटकों में भारत के इतिहास का प्रायः वही परिच्छेद है, जिसमें उनकी संस्कृति अपने पूर्ण वैभव पर थी, ब्राह्मण और बौद्ध संस्कृतियों के संघर्ष से जब उसका स्वरुप प्रखर हो उठा था।" बाबू गुलाबराय जी के इस कथन की सार्थकता स्वयं सिद्ध होती है।

प्रसाद अपने सभी नाटकों में संकुचित राष्ट्रीयता अथवा प्रान्तीयता के स्तर से बहुत ऊपर उठकर सम्पूर्ण आर्यावर्त के महत्त्व–गान का लक्ष्य लेकर आगे बढ़े। प्रसाद के इस सांस्कृतिक जागरण से अन्धकाराच्छन्न स्वर्णिम अतीत पुनर्प्रकाशित हो उठा है और उन्होंने इसके माध्यम से जीवन की सर्वव्यापी समस्याओं का समाधान खोज निकाला।

इसी को दृष्टि में रखकर डॉ0 नगेन्द्र ने कहा– "उनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना, उनके महान् कोमल चरित्र, उनके विराट् मधुर दृश्य और उनका काव्य–स्पर्श हिन्दी में अद्वितीय है।" प्रसाद ने अभिनव रुप–विधान प्रस्तुत करके नाटकों में एक नये युग की शुरुआत की। "उन्होंने हिन्दी नाटकों में मौलिक क्रान्ति की। उनके नाटकों को पढ़कर लोग द्विजेन्द्रलाल राय और गिरीशचन्द्र घोष के नाटकों को भूल गये।"

पराधीन भारत में जैसे–जैसे स्वदेशी, स्वधर्म, समाजसुधार, विश्वबन्धुत्व, शिक्षा मानवता आदि से सम्बद्ध विचारों का आगमन होता गया, प्रसाद के संवेदनशील लेखन द्वारा उनके नाटकों में वह ढलता गया। अपनी प्राचीन सांस्कृतिक गौरवगाथा, आधुनिक उदान्त राष्ट्रीय चेतना, और तत्युगीन मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति के लिये प्रसाद जी ने अपने नाटकों का वर्ण्य विषय प्राचीन भारत के सभी प्रमुख युगों से लिया। उनके नाटक स्कन्धगुप्त हो या अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त हो या ध्रुवस्वामिनी सभी में उनका मानवताप्रेम, देशप्रेम, युगचेतना, युग–युग से शोषित नारी की समस्याएँ एवं उदात्त प्रेम की भावना तथा स्वस्थ सामाजिक चेतनाओं के प्रति उद्बोधन की भावना दृष्टिगत होती है। उन्होंने तत्युगीन समस्याओं को अपने नाटकों द्वारा उठाकर उनके व मूल्य आधारित समाधान प्रस्तुत कर सुन्दर मानव समाज की रचना का स्तुत्य प्रयास किया।

इसके लिये उन्होंने प्राचीन भारत के सांस्कृतिक और आर्दश मूल्यों को ऐतिहासिक कथावस्तु द्वारा उजागर कर समाज के आत्मविश्वास प्रदान करने के साथ–साथ अपनी खोई हुई अस्मिता को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया।

यदि हम प्रसादकालीन युग परिवेश पर दृष्टिपात करने के पश्चात उसके आलोक में उनके इतिहास पुराणाधारित नाटकों पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि उन्होंने अपने नाटकों में इतिहास को एक जीवन सांस्कृतिक संघटन के रूप में स्थापित किया है और उसके माध्यम से न केवल अपने युग के संकट को प्रतिपादित किया है जो आज भी प्रसंगिक व अर्थवान है। "आज समूचा विश्व में विस्फोट की स्थिति है। उपभोक्तावादी सभ्यता अपने पांव पसार रही है, सारी दुनिया का बाजारीकरण होता जा रहा है, ऐसी विषम परिस्थिति में राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक चेतना एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा एवं निर्वाह के साथ–साथ नवनिर्माण की समस्या भी और ज्यादा भीषण होती जा रही हैं इसलिये इन संदर्भों में प्रसाद के नाटक और भी प्रसंगिक और अर्थवान हो उठते हैं।"

प्रसाद अपने युग की समस्याओं को उभार कर उन्हें समाधान देने वाले मनीषी साहित्य सृष्टा थे। अतः उन्होंने स्वभाविक रूप से ही नारी के चित्रण पर विशेष ध्यान दिया। उन पर लगाया जाने वाला आरोप कि नारी को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया, असंगत है। उन्होंने उसे आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं दिया, किन्तु आवश्यक महत्त्व देने से भी नहीं हिचके। यह उनके युग की मांग थी, जिसकी उपेक्षा करना उनके लिये असंभव था अतः उनकी पात्र योजना में नारियों का स्थान विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण हैं नारी में उन्होंने सम्पूर्ण विभूतियों को प्रसार माना है और तदनुरूप उनके आदर्श नारी पात्र करूणा, श्रद्धा, त्याग, निष्ठा, सेवा, भावमयता और मर्यादित स्वाभिमान की उदात्त मानवीय वृत्तियों से समन्वित हैं। युगानुरूप उनके व्यक्तित्व का प्रसार करते हुए उन्होंने उनमें जातीय गौरव, राष्ट्रप्रेम एवं लोक मंगल की भावनाएँ भी भर दी हैं। इन आदर्श नारी चरित्रों की एक लम्बी श्रंखला है जिसमें वासवी, देवकी और कमला जैसी वात्सल्यमयी उदार माताएँ और चन्द्रलेखा, वपुष्टमा, पद्मावती, जयमाला और वनमाला जैसी साध्वी पत्नियाँ हैं, राज्यश्री और मल्लिका जैसी करूणामयी, दृढ़चरित्र विधवायें हैं। मणिमाला, वाजिरा, प्रेमलता और कार्नलिया जैसी मयार्दामयी वधुएँ हैं, देवसेना, मालविका कोमा जैसी आत्मनिर्वासिनी प्रणय प्रतिमायें हैं, अल्का, मन्दाकिनी, मनसा और सरमा जैसी जातिय गौरवमयी ललनायें हैं, कल्याणी और ध्रुवस्वामिनी जैसी आत्मगौरव के प्रति जागरूक युवतियाँ हैं, रामा और खड़गधारिणी जैसी निष्ठामयी सेविकायें हैं। प्रसाद नारी के स्वाभिमान और अधिकार बोध के सदैव मान्यता देते आये हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में उसकी एक मर्यादा भी है। वह मर्यादा नारित्व की है।

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद जी की बहुचर्चित नाट्यकृति हैं जिसकी कथावस्तु गुप्तवंश के यशस्वी सम्राट समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त के काल से सम्बन्धित है। इसमें प्रसाद जी ने अतीत के पट पर रख ढूँडा हैं। भारतीय समाज में उस समय अनेक समस्यायें विकराल रूप धारण किये हुये थीं। ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रसाद जी ने मुक्तभाव से नारी–पुरूष के सम्बन्ध, प्रेम–विवाह, अनमेल विवाह, पुनर्विवाह, नारी अधिकार व नारी उत्थान तथा नारी मुक्ति आदि की समस्याओं पर विचार किया है।

समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। वह क्रीत दासी और भोग–विलास की वस्तु के समकक्ष थी। यहाँ तक कि राजा लोग विजेता राजा को प्रसन्न करने के लिये अपनी कन्या को भेंट–उपहार स्वरूप दे डालते थे। किन्तु समाज में इसकी विरोधी प्रवृति भी जीवित थी। नारी आत्मरक्षा के लिये जाग्रत हो रही थी और बुद्धिमान पुरूष नारी के सम्मान और गरिमा की रक्षा में प्राण त्याग करने को भी तत्पर रहते थे। 'ध्रुवस्वामिनी' में नायिका को ये कहते हुये प्रस्तुत किया है–

"पुरूषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकतां यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते। अपनी रक्षा में स्वयं करूंगी।"

सम्पूर्ण नाटक में ध्रुवस्वामिनी का जीवन संकटापन्न होने के कारण सतत् संघर्षशील ही प्रतीत होता है और नारी हृदय की भावुक कोमलता के साथ–साथ उसके चरित्र में नियतिवाद की छाया भी विद्यमान है।

प्रसाद जी ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में बेमेल विवाह की समस्या को उजागर किया है। प्रसिद्ध समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे– रामगुप्त और चन्द्रगुप्त। रामगुप्त क्लीव और दुर्बल चरित्र वाला है। चन्द्रगुप्त स्वाभिमानी, योद्धा, पराक्रमी, उत्साही, तेजस्वी और सच्चरित्र पात्र है। अग्रज भाई होने के नाते राजगद्दी रामगुप्त को मिलती है। रामगुप्त राजगद्दी प्राप्त करने के लिये षड़यंत्रकारी अमात्य शिखर स्वामी का सहारा लेता है। यहाँ तक कि चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर लेता है। रामगुप्त राजा होकर भी राज्य की चिन्ता और उसकी रक्षा के लिये कोई उपाय नहीं करता। वह विलासिता में लिप्त रहता है। तथा कुबड़े, बौनों के नृत्य में आनन्द लेता है। ध्रुवस्वामिनी उसे नहीं चाहती, अतएव वह राजा होकर भी सदा एक ही मानसिक चिन्ता से ग्रस्त है– "जगत की अनुपम सन्दरी मुझसे स्नेह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का राजाधिराज।" इस कथन से रामगुप्त के अन्तस् में चल रहे आन्दोलन का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसी प्रकार नाटक प्रारम्भ से ही प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी के कथन के सहारे उसके जीवन की झलक देते हुये उसके अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया है। ध्रुवस्वामिनी का कथन इसे और प्रमाणित कर देता है–

"सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर। और इन क्षुद्र कोमल निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिये न।"

'ध्रुवस्वामिनी' में रामगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का पाणिग्रहण एक धार्मिक बन्धन स्वरूप ही है। सच तो यह है कि ध्रुवस्वामिनी के मन–मन्दिर में चन्द्रगुप्त की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। लेकिन तब भी ध्रुवस्वामिनी के मन में मर्यादा की रक्षा का प्रश्न है। वह सामाजिक मर्यादा की रक्षा करती है। लेकिन का–पुरूष रामगुप्त उसकी रक्षा से विमुख हो जाता है। तब ध्रुवस्वामिनी के समक्ष भविष्य के लिये समस्या उठ खड़ी होती है। शकराज के सन्धि–प्रस्ताव को स्वीकार कर रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को एक शक शिविर में भेजनी चाहता है और उसके इस प्रस्ताव का समर्थन चाटुकार आमात्य शिखर स्वामी भी करता है। इस पर अपने स्वाभिमान को छोड़कर कातर–भाव से ध्रुवस्वामिनी अपने सतित्व की प्रार्थना करती है–

"राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई, किन्तु मेरा वह अहंकार चूर्ण हो गया हैं मैं तुम्हारी होकर रहूँगी।"

> लेकिन उत्तर में हृदयहीन क्लीव रामगुप्त कहता है–
> "जाओ तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो।"

रामगुप्त के इस उत्तर से ध्रुवस्वामिनी में शाश्वत नारीत्व जाग्रत हो उठता है और वह अपने को आरक्षित पाकर आत्महत्या करने के लिये प्रस्तुत होती है। किन्तु तभी चन्द्रगुप्त वहाँ आकर ध्रुवस्वामिनी को आत्महत्या से विरत करता है और समस्या का समाधान खोजता है। वह कह उठती है–

"नहीं मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी, मैं उपहार में देने की वस्तु शीतल मणि नहीं हूँ मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्म सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।"

नारी को समाज ने सदा सर्वदा से अबला माना है। वह अपनी इस अवस्था के लिये क्या स्वयं भी दोषी है? मंदाकिनी के शब्दों में नारी जाति की कितनी असहाय दशा है–

"अपने निर्बल और अवलम्ब खोजने वाले हाथों से यह पुरूषों के चरण को पकड़ती है और वह सदैव ही इसको तिरस्कार, घृणा

और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है।"

मन्दाकिनी के रूप में प्रसाद ने एक बुद्धिमती, विवेकशील और कर्त्तव्यपरायण नारी के दर्शन कराये हैं। मन्दाकिनी गुप्त साम्राज्य की संकटापन्न स्थिति से वह अत्यन्त चिन्तित है और संकट से निपटने के सभी सम्भव उपायों पर विचार भी करती है। वह कहती है–

"भयानक समस्या है कि मूर्खों ने स्वार्थ के लिये सर्वनाश का निश्चय कर लिया है। सच है वीरता जब भागती है तब उसके पैरों से छल छन्द की धूल उड़ती है। कुमार चन्द्रगुप्त को यह समाचार शीघ्र मिलना चाहिये।"

ध्रुवस्वामिनी धर्मशास्त्र को अपर्याप्त अपूर्ण कहती है क्योंकि वह विवाह की मर्यादा को स्थिर करता है किन्तु उसके संरक्षण का भार केवल स्त्री पर छोड़ देता है और मर्यादा तोड़ने वाले पुरूष को दण्ड नहीं देता। धर्माधिकारी के सामने मंदाकिनी इस समस्या का उठाती है–

"आर्य आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म बन्धन में बाँधकर उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार, कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते जिससे वे स्त्रियाँ आपत्ति में अवलम्ब माँग सकें। क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं?"

प्रसाद जी का मानना है है कि अत्याचारी पुरूष के साथ जीवन व्यतीत करना स्त्री जाति की नियति नहीं है। नाटक में नारी को संरक्षण प्रदान करने के प्रश्न पर धर्माधिकारी व्यवस्था देता हुआ कहता है–

"विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस प्रकार पद–दलित नहीं किया जा सकत.....यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं पर गौरव से नष्ट आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी है, क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।"

प्रसाद जी ने ध्रुवस्वामिनी नाटक में नारी मुक्ति की समस्या को उठाया है। वैश्वीकरण के दौर में नारी छल, प्रवंचना, धोखे का शिकार हो रही है। पुरूष उससे छल से विवाह कर लेता है जब उसे पता चलता है कि मेरे साथ धोखा हुआ है तो वह उससे छुटकारा पाने का अधिकार भी रखती है। क्योंकि पुरूष पुनर्विवाह कर सकता है तो नारी क्यों नहीं। ध्रुवस्वामिनी की रक्षा करने में असमर्थ रहता है, ऐसे पुरूष से नारी आसानी से छुटकारा पा सकती है।

"मृते प्रव्रजितेनष्टे क्लीव च पतिते पतो
एषु आपत्सु नारीणां पतिरन्यों विधायते।।"

अर्थात पति के मरने पर, सन्यास लेने पर, खौजाने पर, नपुंसक होने पर और पतित हो जोने पर, इन आपत्तियों में नारियों के पुनर्विवाह करने का विधान है।

नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' ऐतिहासिक नाटक होकर भी वर्तमान की समस्याओं को भी उठाता है। गुप्तकालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिवेश में आज का वर्तमान भारत भी उजागर हुआ है। जैसे उन्मुक्त, विलासी, स्वार्थी शोषक पीड़क राजा तब भी थे और आज भी हैं। राजशक्ति प्राप्त करके अधिकारी रक्षक नहीं रहते भक्षक बन जाते हैं। सत्ता–कुर्सी पाकर शासक जनता से किये गये वायदों को भूल जाते हैं। जन–सेवा को व्रत उन्हें याद भी नहीं होता। आचार्य मिहिरदेव का शकराज को यह उद्बोधन जितना गुप्तकुल में सच था उतना भी आज भी है। आचार्य मिहिरदेव शकराज कहते हैं–

"राजनीति ही मनुष्य के लिये सब कुछ नहीं है राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्वकल्याण से व्यापक सम्बन्ध है। राजनीति का नैतिकता से गहरा नाता है।"

दाम्पत्य के सम्बन्ध में पुराहित ने ध्रुवस्वामिनी को जो उपदेश दिया है। वह वर्तमान नारी के जीवन का मूलमंत्र है। "स्त्री और पुरूष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार रक्षा और सहयोग ही तो विवाह है।" इससे प्रतीत होता है कि 'विवाह दो शरीरों का नहीं आत्माओं का मिलन है।' यह बात वर्तमान नारी के हृदय और विचारों को प्रतिबिम्बित कर रही है।

इस नाटक में प्रधानतः नारी की समस्या है। यह विषय सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। समाज, कुटुम्ब, कर्मकाण्ड एवं धर्मशास्त्र में स्त्री का क्या स्थान है, सिद्धान्त एवं व्यवहार में कहाँ और क्यों अन्तर आता है, इस अंतर के कारण लोकमंगल विधान में क्या व्याघात पड़ जाता है– इत्यादि अनेक प्रश्न इसी प्रसंग में खड़े होते हैं।

नारी की समस्या कोई नई समस्या नहीं । नारी के अधिकार और कर्त्तव्यों की चर्चा नव जागृति काल में बहुत ही गम्भीरता से उठाई गई थी। 'प्रसाद जी भी इससे अवगत थे। नारी के जीवन के विषय में प्रसाद जी की अपनी मान्यतायें थीं, प्रसाद जी एक कवि और लेखक के साथ एक चित्रक और दार्शनिक भी थे अतः ध्रुवस्वामिनी और कोमा के रूप में प्रसाद जी ने अपनी भावना, कल्पना और विचारधारा को पूर्ण रूप से दिया है। नारी जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान किया है और उसके अधिकारों की रक्षा का समर्थन किया है। डा0 जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने लिखा है–

"वर्तमान समस्या नाटककारों की भांति 'प्रसाद' ने केवल समस्या ही खड़ी नहीं की है वरन् उनके उत्तर की व्यवस्था भी की है। इसमें तर्क और बुद्धि का योग जहाँ तक सम्भव है वह भी उपस्थित किया गया है।.....प्रसाद ने प्रथम समस्या का उत्तर दिया– मोक्ष और परिवर्तन से जिस कल की अन्विति उत्पन्न हुई है उसी में भारतीयता का सच्चा स्वरूप दिखाई पड़ता है।"

"नाटक में एक दूसरी भी समस्या है। इसका भी विचार आदिकाल से होता आया है। यदि राजा दुर्बल, अक्षम और अत्याचारी हो तो राज्य के कल्याण के विचार से उसके स्थान पर योग्य व्यक्ति की स्थापना को भार सदैव प्रजा और प्रजा के प्रतिनिधियों पर होना ही चाहिये।"

इन दोनों ही समस्याओं के माध्यम से भी प्रसाद जी युग की गहन समस्याओं का चित्रण करना चाहते थे। ध्रुवस्वामिनी नाटक द्वारा भी प्रसाद जी ने समसामयिक समस्याओं को प्रस्तुत किया है और इस परिपेक्ष्य में उन्होंने इतिहास को भी नकार दिया है "क्योंकि वे क्लीव और आचरण से पतित रामगुप्त को उसी के सम्मुख दोहरा दण्ड देकर विद्रोह को नवजागरण के अनुरूप व्यक्त करना चाहते थे। इसके बिना तो वह सामान्य परम्परा का पालन मात्र रह जाता है विद्रोह नहीं। प्रसाद ने रामगुप्त की ईर्ष्या ओर प्रतिशोध को व्यक्तिगत न बनाकर उसमें शासक चरित्र की विकृतियों और राष्ट्रीय अपमान भूलकर उसे सार्वजनिक ऐतिहासिक अपराधी के रूप में पहचानने की पहल की।"

प्रसाद पर यह टिप्पणी की जाती है कि उन्होंने अतीत को गौरवान्वित किया। इस टिप्पणी द्वारा कुछ लोगों का मन्तव्य उनके महत्तव ाक प्रतिपादन करना है तो कुछ लोग, उन पर आरोप भी जड़ देते हैं। "आश्चर्य है कि जो लेखक निरन्तर रूढ़ियों पर आक्रमण करता रहा है, जो इतिहास की विकृतियों को उधाड़कर रखता रहा, जो कहता रहा कि प्रकृति के यौवन का श्रंगार बासी फूल नहीं कर सकते, झड़ जाना या धूल में मिल जाना ही जिनकी नियति है– उस पर यदि कोई अतीत को गौरवान्वित करने का आरोप लगाता है तो क्या यह प्रसाद के रचना साक्ष्य के अनुरूप होगा।"

प्रसाद ने अतीत को गौरवान्वित करने का कोई मुद्दा ही नहीं लिया। वहाँ है ग्रहण और त्याग का विवके और यदि यह विवेक परम्परा और वर्तमान दोनों में जारी रहे तो हर्ज क्या है अतः कहा जा सकता है कि जहाँ तक सृजनशील साहित्य का प्रश्न है, स्थूल प्रत्यक्ष की सत्ता उसके लिये बहुत तात्विक नहीं होती, वहाँ घटना,

पात्र, स्थिति सब प्रतीक हैं। इसलिये साहित्य अनुभूति के स्तर पर पदार्थ या व्यक्तिगत संज्ञा न होकर प्रतीक संज्ञा होता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि अतीत की घटनाओं को वर्णन करना अतीत के मुर्दे उखाड़ना नहीं बल्कि वर्तमान परिपेक्ष्य में उससे शिक्षा ग्रहण करना एवं वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करना ही है। प्रसाद इस कसौटी पर शत् प्रतिशत् खरे उतरते हैं। प्रसाद के नवीन दृष्टिकोण जानने के लिये उन पर पुनर्विचार करना एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर उन्हें समझना होगा।

संदर्भ

1. प्रसाद का गद्य साहित्य – पृ0 30, 31, 47 – राजमणि शर्मा
2. आधुनिक साहित्य – पृ0 31 – आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी
3. हिन्दी नाटक – पृ0 50 – डा0 बच्चन सिंह
4. प्रसाद की कला – पृ0 78 – डा0 गुलाब राय
5. विचार और अनुभूति – पृ0 45 – डा0 नगेन्द्र
6. काव्य के रूप – पृ0 69 –डा0 गुलाब राय
7. जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश – पृ0 28, 24 के नाटकों में प्रतिबिम्बित युगीन समस्यायें –स्वामी प्यारी कौड़ा
8. ध्रुवस्वामिनी – पृ0 17, 12, 28 –जयशंकर प्रसाद
9. जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता – पृ0 25, 29 – प्रभाकर क्षेत्रिय